



INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

“श्रीमद्भगवद्गीता में निहित निष्काम कर्मयोग की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता”

Dr. Satender Dutt Amoli

(Associate Professor)

Department of Yogic Science

Sparsh Himalaya University, Dehradun (Formerly Himalayiya University) Uttarakhand.

Archana Singh

(Research Scholar)

Department of Yogic Science

Sparsh Himalaya University, Dehradun (Formerly Himalayiya University) Uttarakhand.

शोध सारांश : योग शिक्षा में फल और आसक्ति को त्यागकर भगवदाज्ञानुसार केवल भगवान् के लिये समत्व बुद्धि से कर्म करने का नाम निष्काम कर्मयोग है, इसी को 'समत्वयोग', 'बुद्धियोग', 'कर्मयोग', 'तदर्थकर्म', 'मदर्थकर्म', 'मत्कर्म', आदि नामों से कहा जाता है।¹ कर्म मनुष्य की उन्नति का मूल है। कर्म से ही मनुष्य स्वयं और स्वदेश दोनों का दुख दूर कर सबको सुखी बना सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग का अर्थ सिर्फ काम करते जाना नहीं है। कर्मयोग गीता का अपना ही गढ़ा हुआ शब्द है। विश्व के चिंतक को यह गीता की अपनी ही देन है। कर्मयोग की इसी देन के कारण गीता आज भी विश्व को वैसा ही नवीन संदेश दे रही है जैसा नवीन संदेश इसने कुरुक्षेत्र की रणभूमी में हथियार फेंककर निराश खड़े हुए अर्जुन को दिया था। जीवन के रणक्षेत्र में खड़ा हुआ प्रत्येक व्यक्ति अर्जुन है, प्रत्येक के सम्मुख जीवन की कठोर, विषम परिस्थितियाँ उठ खड़ी होती हैं। हमसे प्रत्येक व्यक्ति इन विषम परिस्थितियों में अपने हथियार फेंककर निराशा का करुण क्रन्दन करने लगता है। गीता के कर्मयोग ने गांधीव फेंककर पलायन करने वाले अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश देकर फिर से रणभूमी में ला खड़ा किया था। वही योग शिक्षा में भी कर्मयोग हमें निराशा से आशा के जगत में लाकर खड़ा कर सकता है। कर्मयोग जिसने निराश हृदय में आशा का संचार किया, जिसने निर्बल को सबल, भयग्रस्त को साहसी, कर्म सन्यासी को कर्मयोगी बना दिया है।

ऐसा जीव या योगाभ्यासी जिसका अंतःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया है, जिसके लिए मिट्टी, पत्थर या स्वर्ण एक समान हैं, उसे योगयुक्त अर्थात् योग में स्थित कहा जाता है। ऐसा योगी सभी योगियों में श्रेष्ठ है जो सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, निष्पक्ष, घृणा करने वालों तथा बंधुजनों, धर्मात्मा तथा पापियों-इन सभी में समान भाव रखने वाला होता है।

कूट शब्द : श्रीमद्भगवद्गीता, कर्मयोग, समत्वयोग

प्रस्तावना :

जगत का सारा दुख केवल कर्म से ही दूर हो सकता है। अतएव योग शिक्षा का परम उद्देश्य यह है कि सबको सुख मिले एवं हर व्यक्ति का जीवन सुखमय बने इसके लिए कर्म करने की आवश्यकता है, निष्काम कर्मयोग का अर्थ फल में आसक्ति का त्याग है। गीता उस कर्म को करने का आदेश देती है जो शुभ में नियुक्त करता है। पाप, अशुभ, अहं और विकारों से मुक्त कर्म को गीता अनासक्त कर्म कहती है। अनासक्त कर्म वह है जिन्हें करने वाले भय, संशय, विषय-विष, पतन और क्षय से मुक्त होकर 'निर्मानमोहाः' और 'जितसंगदोषाः' 'अध्यात्मनित्याः' और 'द्वन्द्वैर्विमुक्ताः' रहते हैं। जो सदा 'शुचित्रताः' स्वच्छ, निर्मल, पवित्र हैं, जिन्हें सुख-दुःख आदि द्वन्द्व स्वधर्म से नहीं डिगा सकते; जो पाप, ताप, सन्ताप, विषाद आदि के व्यूहों में नहीं घिरते, बल्कि जो साफ निकल जाते हैं उन्हें अनासक्त कर्मयोगी कहते हैं। योग में सिद्ध होने की इच्छा वाले यत्नशील व्यक्ति के लिए निष्काम कर्म करना ही साधन है और योग में सुस्थापित योगी के लिए मन की शान्ति ही लोक-कल्याण के कार्य का साधन बन जाती है। ऐसा अनासक्त कर्मयोगी ही पुरुषोत्तमयोग द्वारा अव्यय परम पद को पाता है-

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।

द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥²

अनासक्त योगी अपने मन और बुद्धि को आत्मा में टिकाये रहता है और हृदय के पवित्र स्नेह से उन्हें सींचता है। जिन कर्मों से मनुष्य बन्धन में नहीं बँधता या जीवन्मुक्त रहता है उन्हें अनासक्त कर्म कहते हैं।

अनासक्त कर्मयोगी विषयभोगों में न पड़कर नित्य निजानन्द का अनुभव करता है और ब्रह्मयोग से युक्त रहता है- जो इस जगत् में सुखी जीवन चाहते हैं उन्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहम्, और विकारों के वेगों को सहना चाहिये।³ जो काम-क्रोधादि के आवेगों में नहीं बहता वही अनासक्त कर्मयोगी है और वही सदा सुखी है।⁴ अनासक्त कर्मयोगी ही ऋषि है। जो ऋषि है वह सदा ब्रह्म में निवास करता है, संसार में सर्वत्र समाये हुए ब्रह्मसुख का पूरा-पूरा लाभ उठाता है।⁵

मेरे प्रिय पार्थ! ऋषियों को सहज में ब्रह्मनिर्वाण मिल जाता है क्योंकि ऋषि अपने ब्रह्ममय आचरण से, इन्द्रियजय से, एकाग्रता और अनन्यता से, संयम और साधना से पापों को जला डालते हैं- उनका बीज भी नहीं रहने देते। ऋषि में या अनासक्त कर्मयोगी में दुविधा, संशय और द्वन्द्वों के दोष नहीं रहते क्योंकि वह अपनी आत्मा में स्थित रहता है।

एक सत्य यह भी है कि अनासक्त कर्मयोगी ऐसे कर्म करता है जिनसे सब जीवों का हित हो। सेवा, प्रेम या त्याग में जब स्वार्थ नहीं होता तभी अनासक्त कर्म की साधना हो पाती है। यह भी कह सकते हैं कि स्वार्थ के लिये छल, कपट, राग, द्वेष, पीड़ा और हिंसारूप कुकर्म करने वाला सदा आसक्त रहता है। परमार्थ, प्रेम, पुण्य, सत्य, सेवा और स्वधर्म के लिये कर्म करने वाला अनासक्त रहता है। अनासक्ति में शुभ कर्म की प्रज्ञा अपने आप उभरती है और मनुष्य को सुखी रखती है।

आँख खोलकर, विचारपूर्वक, मनुष्यता में रहकर किया गया शुभ कर्म या पुण्य कर्म ही अनासक्त कर्म है। आँखें बन्द करके अज्ञान या अन्धेपन से, पशुता से किया गया कर्म आसक्त कर्म है। अनासक्तियोग ही भक्तियोग है, यही गुणातीतयोग है और इसी को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं। मुक्तियोग भी अनासक्तियोग ही है। मनोयोग से मनुष्यता के कर्म करना भी अनासक्तियोग है।

मनुष्य में किसी न किसी प्रकार की इच्छा अवश्य होती है। इच्छा करने वाला मन है, इच्छा मन की गति है। मन जो चाहता है वही करता है और उसी में आसक्त रहता है। जब मन परस्पर विरोधी इच्छाओं और द्वन्द्वों के संघर्षों से छूटकर आत्मा, परमात्मा या अपने इष्ट के सम्मुख आता है, तब वह स्वयं ही अनासक्त हो जाता है या सब ओर से सिमटकर एक में लग जाता है। इसीलिये भगवान ने कहा-

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥⁶

मेरे आत्मस्वरूप अर्जुन! अपने मन और बुद्धि को मुझे दे दो। अपने भीतर और बाहर मुझे रहने दो। तब तुम मुझमें रहकर मेरे साथ कर्म कर सकोगे और तुम्हारा कर्म स्वतः ही बन्धन रहित या अनासक्त होगा।

योग शिक्षा के द्वारा मन को संसार की ओर से राग, द्वेष, भय, संशय, काम, क्रोध आदि विकारों की ओर से मोड़कर भगवान् की ओर फेरते ही अनासक्त कर्मयोग की या पवित्र प्रेमयोग की सिद्धि हो जाती है। क्योंकि एक पवित्र मन सदा अनासक्त रहता है, कोई राजा हो या रंक, बड़ा हो या छोटा यदि उसके मन और बुद्धि में परमात्मा की पवित्रता है तो वह अनासक्त कर्मयोग का परम लाभ सहज में प्राप्त कर लेता है।

निष्काम सेवा ही निष्काम कर्म का सर्वश्रेष्ठ रूप है अर्थात् अपने समय, शक्ति और धन से दूसरों की मदद करना, लेकिन बदले में कोई आशा न रखना। परमात्मा को प्रसन्न करने के एकमात्र उद्देश्य से की गई सेवा मन को शुद्ध करती है और अहंकार का नाश करती है। सेवा को साधना समझकर भक्ति भावना से करना चाहिए। महात्मा गाँधी कहते हैं कि विनम्रता से की गई प्रेमपूर्ण सेवा मनुष्य की आत्मशुद्धि का कारण बनती है और इस प्रकार उचित समय आने पर परमात्मा के साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मानवता की सेवा ही परमात्मा की पूजा है। स्वामी विवेकानन्द समझाते हैं, 'कभी निर्धन को दिए गए दान का दिखावा मत करो और न ही उनसे किसी प्रकार की अपेक्षा करो, बल्कि आपको उनका आभारी होना चाहिए कि उन्होंने आपको दान देने का अवसर दिया।' निष्काम सेवा से अहंकार का नाश होता है और विनम्रता आती है।⁷

वास्तव में कर्म अपने आप में आसक्ति का कारण नहीं है, बल्कि कर्मों से प्राप्त होने वाले फल में आसक्ति मनुष्य के कर्मों का भंडार बढ़ाती है। इसलिए यदि मनुष्य कर्मफल परमात्मा को अर्पित कर देता है तो कोई कर्म उसके बंधन का कारण नहीं बनता, उसके कर्मों के लेखे में शामिल नहीं होता या उसके मन को विचलित नहीं करता।

कर्मयोग का मार्ग कोई भी व्यक्ति अपना सकता है। इसके लिए उसे अपने घर-परिवार या समाज को छोड़ने की आवश्यकता नहीं। परंतु फिर भी यह मार्ग जितना सुगम दिखाई देता है, उतना है नहीं, क्योंकि इच्छाओं से मुक्त होना अत्यंत कठिन है। यदि योग की सहायता से इंद्रियों पर नियंत्रण कर लिया जाए और सांसारिक पदार्थों की इच्छाएँ भी नष्ट हो जाएँ, फिर भी मन की गूढ़ गहराइयों में छिपी सूक्ष्म इच्छाओं को समाप्त करना अत्यंत मुश्किल है। उदाहरण के तौर पर नाम, प्रसिद्धि, पद या सम्मान पाने की इच्छा। परन्तु योग शिक्षा से अत्यंत सरल भाव से इन सब पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

कर्मयोग तथा ज्ञानयोग एक दूसरे के पूरक हैं। उपनिषदों की शिक्षा है कि साधक स्वयं को अपने स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर और मन से अलग समझे। उसे यह विश्वास होना चाहिए कि वह दिव्य आत्मा है जो इन सबसे अलग संपूर्ण जगत के दृश्यों का शाश्वत

साक्षी है। वह न कर्ता है और न ही भोक्ता। आध्यात्मिक मार्ग के साधक को यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि वह स्वयं कर्ता है, चाहे वह कार्य उसके मन और शरीर द्वारा ही क्यों न सम्पन्न किया जा रहा हो। योग वाशिष्ठ में कहा गया है-

जिस प्रकार पक्षी दो पंखों से उड़ने में समर्थ होते हैं, उसी प्रकार कर्म और ज्ञान दोनों मिलकर मनुष्य को परमपद का अधिकारी बनाते हैं।⁸ जो पुरुष कर्मफल की इच्छा न रखते हुए अपना कर्तव्य करता है, वह संन्यासी तथा योगी दोनों है। संन्यासी वह नहीं जो केवल अग्नि त्याग दे। योगी वह नहीं जो समस्त क्रियाकलाप त्याग दे।⁹

उपसंहार:

कर्मयोग में कर्म और निष्काम कर्म, इन दोनों के संबंध का बहुत महत्त्व है। उचित कर्म आलस्य (तमोगुण) का नाश करता है और इच्छाओं का त्याग अधीरता (रजोगुण) को नियंत्रण में रखता है। आलस्य का विनाश और इच्छाओं का त्याग, मन की शांति, हृदय की निर्मलता और सही दृष्टिकोण आदि (सतोगुण) का विकास करने में सहायक होते हैं। भगवद्गीता तथा श्रीमद्भगवद्गीता दोनों ग्रंथों में भगवान श्रीकृष्ण यही कहते हैं कि कर्मयोगी का प्रत्येक विचार, वचन और कर्म परमात्मा को समर्पित होना चाहिए। अतः योग शिक्षा के द्वारा उपरोक्त सभी पर एक सार्वभौमिक सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :

- ¹ रामदेव, स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता गीतामृत, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार: पृ0-82
- ² रामसुखदास, स्वामी, गीता-प्रबोधनी, गीताप्रेस, गोरखपुर: 15/5
- ³ रामदेव, स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता गीतामृत, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार: 5/21
- ⁴ रामसुखदास, स्वामी, गीता-प्रबोधनी, गीताप्रेस, गोरखपुर: 5/23
- ⁵ रामदेव, स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता गीतामृत, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार: 5/25
- ⁶ रामदेव, स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता गीतामृत, दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार: 12/8
- ⁷ रामसुखदास, स्वामी, गीता-प्रबोधनी, गीताप्रेस, गोरखपुर: 15/5
- ⁸ शंकरनारायण, के०, मोक्ष के मार्ग, राधास्वामी सत्संग ब्यास, डेरा बाबा जैमल सिंह, पंजाब: पृ0-288
- ⁹ श्रीमद्भगवद्गीता: 6/1